© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

प्राचीन काल में बौद्ध शिक्षण संस्थानों की प्रासंगिकता

रूबी कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा, बिहार।

भारत में बुद्ध का अविभार्व धर्म, दर्शन और इतिहास की दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यद्यपि बुद्ध की भारत में अनेक चिरस्मरणीय देन है, लेकिन उन अनेक देनों मे से, जो बुद्ध और बौद्ध धर्म ने हमारे देश के लिए दी है, एक अत्यंत महत्वपूर्ण यह है कि उनके अविभार्व के साथ ही हमारे देश मे वास्तविक रूप से ऐतिहासिक युग का आरंभ होता है। हमारे देश का लेखबद्ध इतिहास वस्तुतः भगवान बुद्ध के उदय से ही शुरू होता है। यद्यपि भगवान बुद्ध के पूर्व भी सारे देश को एक राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक इकाई बनाने के प्रयत्न हुए थे, परंतु इस दिश में जो प्रेरणा भगवान बुद्ध के प्रभाव से मिली, उसने इसे शीघ्र कार्यान्वित होने में सहायता दी।[1]

बौद्ध धर्म परिस्थियों का उपज था। महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव के पूर्व ही हिंदू धम में एक प्रकार का दंभ प्रवेश कर चुका था। यज्ञ के नाम पर पशुबलि का बोलबाला था। तपस्या के नाम पर अनेक पुरूष गृह त्याग कर वनों मे मारे–मारे फिरते थे, तप्सया के साधनों के नाम पर भिन्न–भिन्न शारीरिक यातनाओं के अविष्कार हो चुके थे। बुद्ध ने ऐसे धर्म सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जो प्रत्यक्ष जीवन की वास्तविक समस्यों का विश्लेषण करके धर्म का एक नवीन रूप प्रस्तुत करें। महात्मा बुद्ध संसार को दुखमय मानते थे। उनके अनुसार इसका त्याग करके मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है। बौद्ध धर्म का प्रचार भारत में 600 ई० पूर्व ही गया था। बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र विहार या मठ थे। बौद्ध कालीन शिक्षा का इतिहास ही बौद्ध संघ का इतिहास है। शिक्षा की समपूर्ण व्यवस्था ही भिक्षुओं के हाथ में थी। इसमें धार्मिक व भौतिक दोनों प्रकार की शिक्षाएं सम्मिलित थी। बौद्ध धर्म का उद्भव और विकास भारत में हुआ तथा उसके बीच उपनिषद्ों मे विद्यमान है।[2]

बौद्ध मठ एवं विहारों के विकास में विभिन्न राजाओं एवं श्रेष्ठियों का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। श्रावस्ती के अनाथपिंडक ने कई बौद्ध विहार बनवाये, मगध के शासक बिम्बिसार ने बौद्ध धर्म को समर्थन दिया तथा उसने वेणुवन बुद्ध को दान दिया। बिम्बिसार का पुत्र आजातशत्रु ने जब वैशाली पर विजय पाई तो रक्तपात से विचलित होकर बुद्ध उपासक बन गया। कौशांबी क राजा प्रसेनजित बुद्ध के अनुयायी बताए गए है।[3]

बौद्ध के उपरांत उनके विचार एवं सिद्धांत का पर्याप्त प्रचार–प्रसार हुआ। भिक्षुओं की संख्या बढ़ी, लेकिन सर्वसाधारण वर्ग अभी भी बौद्ध शिक्षा से वंचित रहा। अतः इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि सर्वसाधारण को भी बौद्ध शिक्षा दी जानी चाहिए। परिणामतः इसका प्रसार–प्रचार सर्वसाधारण वर्ग में होने के कारण पाठ्यक्रम एवं शिक्षा का फलक विस्तृत हुआ, और लोगों का आकर्षण भी बढ़ा। संघाराम, मठ एवं विहार जो प्रारंभ में विशुद्ध धार्मिक केंद्र थे, शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र बनते गए और बड़े शिक्षण केंद्र के रूप में स्थापित हुए। प्रारंभ में इन स्थानों पर मुख्यतः धर्म–दर्शन एवं अध्यात्म की शिक्षा दी जाती थी। किंतु कालांतर में जनपयोगी विषयों को भी शिक्षा दी जाने लगी। प्रारंभ में इनके नियम और अनुशासन गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की भांति था, किंतु बाद में सांगठनिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत इनका विकास हुआ। राजगृह, वैशाली, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, लुम्बिनी आदि कई नगरों में मठों एवं विहारों का उदय हुआ। जो कालांतर में बौद्ध शिक्षा के प्रधान केंद्र के रूप में विकसित हुआ। इन विहारों में श्रावस्ती का जेतवन, कपिलवस्तु का निग्रोधाम, वैशाली का कुटागारशाला तथा आम्रवन, राजगृह का वेणुवन, यष्टिवन और सीतावन आदि उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कई संघाराम का भी विकास हुआ, जहां शिक्षण कार्य के साथ–साथ आध्यात्मिक चिंतन मनन होता था।[4]

बौद्ध शिक्षा केंद्र की संपूर्ण व्यवस्था भिक्षु संघ के हाथ में रहती थी।[5] वह संघ चाहे छोटा हो या बड़ा। नालंदा, वलभी और विक्रमशिला जैसे प्रसिद्ध शिक्षण केंद्र जो प्रारंभ में बौद्ध विहार थे, जिसकी व्यवस्था संघ के सदस्य देखते थे। कालांतर में वह प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र के रूप में स्थापित हुआ।[6] इन विश्वविद्यालयों का अध्यक्ष कोई ख्यातिबब्ध भिक्षु होता था, जो प्रबंधक की भूमिका का निर्वहन करता था। प्रायः संघ के सदस्य उसका निर्वाचन करते थे। निर्वाचन में चरित्र, पांडित्य और वय का पूरा ध्यान रखा जाता था।[7] 9 वीं शताब्दी में जलालाबाद का एक विद्वान नालंदा का प्राचार्य चुना गया था। जो यहां यात्रा पर आया हुआ था। स्पष्ट है कि महत्वपूर्ण पदों के चुनाव मे स्थानीयता या प्रांतीयता जैसी संकीर्ण मनोवृत्ति के लिए कोई स्थान नहीं था। प्राचार्य के सहायतार्थ दो समितियों का उल्लेख मिलता है – शिक्षा समिति एवं प्रबंध समिति। पाठ्यक्रम निर्धारण तथा अध्यापकों को विषय वितरण

संबंधी कार्य शिक्षा समिति करती थी। पुस्तकालयों का प्रबंध, उनका रख–रखाव, पुस्तकों का पुनर्लेखन, प्रतिलिपि की व्यवस्था आदि बहुतेरे कार्य प्रबंध समिति करती थी।

बौद्ध मठ एवं विहार जो प्रारंभ में धार्मिक केंद्र थे। बाद में वृहद शिक्षण संस्था के रूप में स्थापित हुए, जहां धर्म एवं दर्शन के अतिरिक्त विभिन्न शिल्पां तथा ललित कलाओं एवं अन्य उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती थी। ऋणि और अपंग व्यक्ति को छोड़कर सभी वर्ण एवं जाति के लोग किसी भी विषय का शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। कालांतर में बौद्ध विहारों की प्रेरणा से ही हिंदू मंदिर भी शिक्षण केंद्र के रूप में स्थापित हुए और यही कारण है कि उत्तर काल में ब्राह्मण शिक्षण पद्धति और बौद्ध शिक्षण पद्धति में कोई विशेष अंतर नहीं रह गया। जिस समय बौद्ध धर्म उन्नति के शिखर पर था, देश के कोने–कोने में मठों एवं विहारों का जाल बिछा हुआ था, जिसमें देश–विदेश के छात्र विभिन्न विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। भारतीय राजाओं के सहयोग एवं प्रोत्साहन के कारण एवं विहार उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्र बने। ऐसा उल्लेख मिलता है की सुदूरवर्ती देश जावा के शासक ने भी बौद्ध विश्वविद्यालय नालंदा के विकास में अपना यथोचित सहयोग प्रदान किया था। ऐसे शिक्षण केंद्रों को दान देने के लिए भारतीय राजाओं, सामंतों तथा सेठों में होड़ लगी रहती थी। बदले में इन संस्थाओं द्वारा निःशुल्क शिक्षा वितरित की जाती थी। भिक्षुओं के साथ–साथ छात्रों को भी निःशुल्क भोजन, वस्त्र और आवास की व्यवस्था सुलभ कराई जाती थी। विहार या तो स्वतंत्र नगर थे, या नगरों एवं गांव से दूर बसे हुए थे।[8]

बौद्ध शिक्षा का मूल उद्देश्य आचरण की शुद्धता पर विशेष ध्यान देना रहा है। शिक्षा में धर्म की प्रधानता रही। बोधिसत्व की स्थिति को प्राप्त करने के लिए पूर्ण वैयक्तिक विकास भी आवश्यक समझा गया। बौद्ध भिक्षुओं ने हिंदू सन्यासियों की भातिं साधना व तपस्या द्वारा उच्चतम ज्ञान की प्राप्ति का प्रयास किया था। शिक्षा–दीक्षा पृथ्क–पृथ्क होती थी, फिर भी समाज में जाकर बौद्ध भिक्षु शिक्षा देते थे। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य समाजिक विकास भो कहा जा सकता है।[9]

इन दिनों छः प्रमुख विषयों की शिक्षा दी जाती थी, ये विषय थे – (1) वेद, (2) वैदिक साहित्य – षड्वेदाङ्ग अर्थात शाखा छन्द व्याकरण, निरूक्त एवं कल्प तथ ज्योतिष, (3) ब्राह्मण संहिता और उपनिषद, (4) गृहसूत्र तथा धर्मसूत्र (5) अन्य विषय – सूत्रों के परिशिष्ट का साहित्य व्यापक है। यज्ञों से संबंद्ध विषय के साहित्य का विकास हुआ, जिसका साहित्य कारिका कहलाया। वैदिक अनुक्रमणी का भी निमार्ण हुआ। (6) लौकिक साहित्य – अर्थशास्त्र शिल्प तथा वार्ता। पाणिनी ने धार्मिक तथा लौकिक विषयों के समृद्ध साहित्य भंडार का उल्लेख किया है, जिससे तत्कालीन पाठ विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। बौद्ध विहारों मे बौद्ध दर्शन तथा पाली भाषा की शिक्षा प्रमुखता से दी जाती थी। दर्शन तथा साहित्य

के पंडित के लिए विरोधियों के मतों को भी जानना आनिवार्य हो गया था। अतः ब्राह्मण तथा बौद्ध एक दूसरे के साहित्य भंडार से पूर्णतयः परिचित थे। इसके बिना वे शास्त्रार्थ में विरोधियों को परास्त नही कर सकते थे। अतः बौद्ध विहारों में ब्राह्मण दर्शन का ज्ञान कराया जाता था, तो गुरूकुल के परंपरा की शिक्षा में बौद्ध दर्शन का।[10]

श्रावस्ती

बुद्ध के जीवन काल में श्रावस्ती बौद्ध शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन चुका था। प्रमुख श्रेष्ठी अनाथपिंडक ने बुद्ध के समय में श्रावस्ती के निकट जेतवन नामक विहार का निर्माण करवाया था जहां बौद्ध धर्म, दर्शन आचार एवं विचार की शिक्षा दी जाती थी। 130 एकड़ में फैला यह जेतवन विहार काफी प्रशस्त एवं विस्तृत था, जिसमें लगभग 120 भवन और छोटे–छोटे अनेक कक्ष निर्मित थे। भिक्षुओं और उपासकों के लिए यहां अनेक भवन बने हुए थे। जलीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु जलाशय, छाया के लिए वृक्ष तथा बैठने के लिए उपवन भी बने हुए थे। ह्वेनसांग के अनुसार बुद्ध ने स्वयं यहां बाड़ लगाकर पशुओं के प्रवेश को अवरुद्ध किया था तथा जल प्रबंधन हेतु विशाल नहर का निर्माण करवाया था। अशोक एवं हर्षवर्धन के समय में भी यह बौद्ध शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था, यहां दूर–दूर से शिक्षार्थी आकर विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे। इस प्रकार बोध शिक्षा की दृष्टि से श्रावस्ती एक महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र था।[11]

वलभी

वलभी काठियावाड़ के पूर्व किनारें पर 'वला' नामक स्थान के पास में स्थित थी। यह एक महत्वपूर्ण राज्य की राजधानी तथा बंदरगाह थी जहाँ से भारी संख्या में अंर्तराष्ट्रीय व्यपार होता था। किंतु सातवीं शताब्दी में यह व्यापर से अधिक वह विद्या के केंद्र के रूप में प्रसिद्ध थी। इत्सिंग लिखता है कि उत्तर भारत में सिर्फ नालंदा ही वलभी की समता कर सकती थी। 640 ई० में यहाँ लगभग 100 विहार थे जिसमें 600 भिक्षु पढ़ते थे। स्थिरमति एवं गुणमति नामक प्रसिद्ध विद्वान इसी विश्वविद्यालय में थे। वलभी के स्नातकों को तत्कालीन शासन मे ऊँचे पदों पर नियुक्त किया जाता था। यह विश्वविद्यालय अपनी धार्मिक उदारता एवं बौद्धिक स्वतंत्रता क निमित्त प्रसिद्ध था।[12]

वलभी बड़ी समृद्ध पुरी थी। इसमें सौ करोड़पति नागरिक थे। इन श्रेष्ठियों से विश्वविद्यालय को प्रर्याप्त आर्थिक दान मिलता था। मैत्रेक वंश के राजाओं ने यहाँ 480 ई० से 755 ई० तक शासन

किया। ये राजा साधारण व्ययों के अतिरिक्त बड़े–बड़े दान देते थे। यहाँ के स्नातकों की राज्य नौकड़िया या जीविका प्रारंभ करने के लिए आर्थिक सहायता देती थी।[13]

प्राचीन काल में बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक शिक्षा के केंद्र बिहार में विकसित हुए। इनमें सबसे महत्वपूर्ण नालंदा महाविहार था। इसकी स्थापना कुमारगुप्त द्वारा की गई। हर्षवर्द्धन और धर्मपाल ने इसे प्रश्रय और अनुदान दिया। विक्रमशिला एवं ओदंतपुरी का संस्थापक धर्मपाल था। विक्रमशिला तात्रिक विद्या का प्रमुख केंद्र था और व्रजयान बौद्धमत के प्रचार का भी केंद्र था।[14]

नालन्दा विश्वविद्यालय

पाँचवीं शताब्दी के आरंभ में आधुनिक पटना से करीब 55 मील दक्षिण–पूर्व की दूरी पर, राष्ट्रीय स्तर पर संचालित नालंदा बौद्ध विहार को प्रचुर दान देकर विश्वविद्यालय बनाने का श्रेय गुप्त सम्राट कुमारगुप्त को दिया जाता है। बुद्धगुप्त के शासनकाल (475–495 ई०) में इसका पुनः निर्माण करवाया गया। ऐसी मान्यता है कि नालंदा विश्वविद्यालय के छह मंजिले भवन को छः अलग–अलग राजाओं ने बनवाया था। सातवीं शताब्दी तक यह विश्वविद्यालय अपने उच्चतम शिखर को छू रहा था।[15] बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र की यह जन्मभूमि थी। तथागत ने यहां के आम्रवन में कई दिन व्यतीत करके अपने शिष्यों को अपने धर्म की शिक्षा दी थी। कालांतर में अशोक महान में वहां एक विशाल विहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगता है कि यह स्थान अपने प्रारंभिक काल में ब्राह्मण शिक्षा का केंद्र होते हुए भी बौद्ध धर्म और शिक्षा का भी प्रचार–स्थान था। इसकी प्रमुखता पांचवी सदी के मध्य में अधिक बढ़ी जब बौद्ध विद्वान दिङ्नाग ने नालंदा में जाकर वहां के विख्यात ब्राह्मण पंडित सुदुर्गम को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। समय–समय पर गुप्त राजाओं ने नालंदा के विकास में सराहनीय योग प्रदान किया था, जो उनकी धार्मिक सहिष्णुता और विचारकों की व्यापकता का उज्जवल पक्ष है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त (414–455 ई०) ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था। उसके बाद बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त, नरसिंहगुप्त, बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योग दिया था।[16]

यशोवर्मा के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालंदा के विहारों की शिखर–श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुंबन करती थीं। इनमें अनेक जलाशय थे, जिनमें कमल तैरते रहते थे। यहां कई विशालकाय भवन थे, जिनमें छोटे–बड़े अनेक कक्ष थे। उत्खनन से मिले अवशेष वहाँ की भव्यता प्रमाणित करते हैं। विश्वविद्यालय भवन में व्याख्यान के निमित्त 7 विशालकाय कक्ष और 300 छोटे–बड़े कक्ष थे। विद्यार्थी

छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोने पर कूपों का निर्माण किया गया था, जिसका पुष्टि उत्खनन में मिले साक्ष्य से होता है।[17]

नालंदा विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए 200 गाँव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहां के भिक्षु कार्यकर्ताओं और भिक्षु अध्येताओं का पोषण होता था। यही नहीं इन गांवों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहां भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा निःशुल्क की जाती थी।[18]

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय, नालंदा विश्वविद्यालय यदि अपनी लोकतांत्रिक पद्धित के लिए विख्यात है तो विक्रमशिला विश्वविद्यालय को भी दुनिया का प्रथम शाही विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है। बिहार में स्थापित ये दोनों ही विश्वविद्यालय उस दौर की देन थे, जब यह धरती दार्शनिक विचारों से आप्लवित थी तथा शिक्षा एवं संस्कृति का विकास अपने उत्कर्ष पर था। आठवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य लगभग चार सौ वर्षो तक विक्रमशिला की स्थिति तथा छवि आज के कैम्ब्रिज तथा आक्सफोर्ड से कहीं अधिक उन्नतावस्था में थी।[19] यह विश्वविद्यालय बिहार प्रदेश के भागलपुर जिले में, पूर्व की ओर कहलगाँव के आस–पास गंगा तट पर अवस्थित था। धर्मपाल द्वारा स्थापित विक्रमशिला विश्वविद्यालय, नालंदा विश्वविद्यालय के तरह ही विश्व–विश्रुत हुआ। इस विश्वविद्यालय में अनेक बौद्ध मंदिरों और विहारों का निर्माण यहां कराया गया था। उन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ करते थे तथा सर्वदा दर्शन और धर्म की चर्चाएं आयोजित की जाती थीं। यहाँ के अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रंथों की रचना की, जिनका बौद्ध साहित्य और इतिहास में नाम है। उन विद्वानों में प्रसिद्ध हैं रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, बुद्ध, जेतारि, रत्नाकर शांति, ज्ञानश्री मित्र, रत्नवज्र, दीपशंकर और अभयशंकर। दीपांकर नामक विद्वान भिक्षु ने सैकड़ों ग्रंथों की रचना की थी। वह इस शिक्षा केंद्र के महान प्रतिभाशाली व्यक्तियों में अकेला था जो गौड़ (बंगाल) प्रदेश का रहने वाला था। उसका जन्म 980 ई० में हुआ था। बचपन में ही उसे सांसारिक मोहः–माया से विराग उत्पन्न हो गया और कृष्णागिरि विहार में चला गया, जहाँ उसने राहुल गुप्त से ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात वह ओदन्तपुरी विहार में गया। वहाँ उसे शीलरक्षित, चंद्रकीर्ति और धर्मरक्षित जैसे बौद्ध आचार्यों ने शिक्षा दी। कालांतर में वह बौद्ध धर्म और दर्शन का प्रकांड पंडित हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ वह तिब्बत भी गया था।[20] विक्रमशीला विश्वविद्यालय की विशलता एवं सुदृढ़ता से संबंधित विवरणों से प्रतीत होता है कि यह प्रचण्ड राजकीय दुर्ग से युक्त एक लघु शैक्षणिक नगरी थी, जिसका विस्तार 10 से 12 मील तक था।[21]

उदन्तपुर का विहार

यद्यपि उदन्तपुर का विहार विक्रमशिला विहार से पहले ही स्थापित हुआ था, तथापि विक्रमशिला की विकास चरम सीमा तक नहीं पहुँच सका। फिर भी देश के विद्या केंद्रों मे इसका भी अपना एक स्थान था। यहाँ भी बड़े–बड़े विद्वान आचार्य पद पर रहे तथा यहाँ के विद्यार्थी भी देश–विदेश में कीर्तिलब्ध हुए। अरब के लेखकों ने उदन्तपुर का नाम अदवंश लिखा है। इस विहार का उल्लेख किसी भी राजा के प्रशस्ति–शिला में अभी तक नही मिला है। यही कारण है कि कुछ इतिहासकार मानते है कि इसका संचालन–भार भिक्षु–संघ के हाथ में था, किसी राजा के हाथ में नही। ज्ञात होता है कि भिक्षु संघ नालंदा और विक्रमशिला के बौद्धसंघों से भिन्न मत या संप्रदाय का था, जिसने अपने मत के प्रचार के लिए अलग विद्या–केंद्र संचालित किया था।[22]

इस प्रकार बौद्ध शिक्षा केंद्रों में नालंदा, बलभी, विक्रमशिला और उदन्तपुरी जैसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय तथा कतिपय अन्य विद्यापीठ प्रमुख थे, जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में स्मरणीय भूमिका का निर्वहन करते हुए ज्ञान वितरण की उच्च परंपरा को बनाए रखा। इन संस्थाओं का शैक्षिक स्तर काफी ऊंचा होने के कारण, इनकी श्रेष्ठता सफलता एवं प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर तिब्बत, चीन, वमा, कोरिया, श्रीलंका, जावा आदि सुदूर देशों की बात सुदूर देशों के शिक्षार्थी यहां अध्ययन के निमित्त आते थे। यह प्राचीन भारत के लिए अत्यंत गौरव की बात थी। आज एशिया के बहुतेरे देश जो बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। भारत के प्रति जो सांस्कृतिक सहानुभूति रखते हैं, उसका एकमात्र श्रेय प्राचीन बौद्ध विश्वविद्यालयों को जाता है।

संदर्भ सूची–

1. डॉ० धर्मकीर्ति – बुद्ध का समाजदर्शन, सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, नई दिल्ली, पृ० 110
2. श्याम सुन्दर शेखावत – भारत मे शैक्षिक व्यवस्था का विकास, श्रीकविता प्रकाशन, नवीण संस्करण, जयपर, पृ० 25
3. डॉ० ए० सी० झा – प्राचीन भारत एक सर्वेक्षण (प्रारंभ से लेकर 8 वीं शताब्दी तक), साहित्य भारती पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण , 2011, पटना, पृ० 92
4. डॉ० जयशंकर मिश्र – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, नवम् संस्करण, 2004, पटना, पृ० 538
5. बील, पृ० 70–71
6. वाट्र्स, 2, पृ० 180
7. बील, पृ० 74–79
8. डॉ० जयशंकर मिश्र – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, नवम् संस्करण, 2004, पटना, पृ० 539

9. राजकुमार मिश्रा – भारतीय शिक्षा एवं समाजिक समस्याएं, श्रीकविता प्रकाशन, नवीण संस्करण, जयपुर, पृ० 11
10. डॉ० मदन मोहन मिश्र – बुद्ध कालीन समाज एवं धर्म, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, नवम् संस्करण, 2002, पटना, पृ० 94–95
11. डॉ० जयशंकर मिश्र – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, नवम् संस्करण, 2004, पटना, पृ० 544
12. प्रो० अनंत सदाशिव अलतेकर – प्रचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अनुराग प्रकाशन, पुनःमुद्रित संस्करण, 2014, वाराणसी, पृ० – 93
13. उपर्यक्त, पृ० 94
14. कमर अहसन एवं इमत्याज अहमद – बिहार : एक परिचय, नेशनल पब्लिकेशन, सप्तम संस्करण, 2004, पटना, पृ० – 93
15. डॉ० अजीत कुमार – बिहार का इतिहास (प्रारंभ से 1757 ई० तक), जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2005, पटना, पृ० – 254
16. डॉ० जयशंकर प्रसाद – प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, नवम् संस्करण, 2004, पटना, पृ० – 540
17. उपर्युक्त, पृ० – 541
18. उपर्युक्त, पृ० वही
19. डॉ० अजीत कुमार – बिहार का इतिहास (प्रारंभ से 1757 ई० तक), जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2005, पटना, पृ० – 257
20. डॉ० जयशंकर मिश्र – प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, नवम् संस्करण, 2004, पटना, पृ० – 542
21. डॉ० अजीत कुमार – बिहार का इतिहास (प्रारंभ से 1757 इ० तक), जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2005, पटना, पृ० – 259
22. श्री हवलदार त्रिपाठी सह्रदय – बौद्ध धर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, द्वितीय संस्करण, 1998, पटना, पृ० – 226–229